आत्मप्रेमी ही निर्वाण का पात्र है

जेहउ मणु विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ॥५०॥

ज्यों रमता मन विषय में त्यों ज्यों आतमलीन।
मिले शीघ्र निर्वाण पद, धरे न देह नवीन॥

अन्वयार्थ – **(जाइउ भणइ)** योगी महात्मा कहते हैं **(हो जाइयहु)** हे योगीजनों! **(मणुजेहउ विसयहँ रमइ)** मन जैसा विषयों में रमण करता है **(जइ तिसु अप्प मुणेइ)** यदि वैसा यह मन आत्मा के ज्ञान में रमण करे तो **(लहु णिव्वाणु लहेइ)** शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त कर ले।

वीर संवत २४९२, आषाढ़ शुक्ल ८, रविवार, दिनाङ्क २६-०६-१९६६
गाथा ५० से ५३ प्रवचन नं. १८

---

५० वीं गाथा। ४९ वीं में ऐसा आया था। यह योगसार है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि ने ४९ वीं में ऐसा कहा कि यह आयु घटती जाती है, फिर भी तृष्णा नहीं घटती। आयु घटती जाती है और तृष्णा नहीं घटती; बढ़ती है क्योंकि इसे आत्मा के स्वभाव का प्रेम नहीं है। समझ में आया? आत्मा, वह एक ओर राम और दूसरी ओर गाँव। एक ओर आत्मा सच्चिदानन्द अनाकुल आनन्दकन्द पदार्थ है और एक तरफ पुण्य-पाप के विकल्प, राग, शरीर, वाणी, कर्म और बाह्य सामग्री है। जिसे बाह्य सामग्री के प्रति प्रीति है, उसे तृष्णा बढ़ जाती है।

भगवान आत्मा शुद्ध सन्तोष का पिण्ड आनन्द का कन्द है। ऐसे आत्मा के अन्तर प्रेम के बिना बाहर की चीज़ के प्रेम से – फिर (भले ही) अन्दर शुभराग का, पुण्य का प्रेम होवे तो भी, वह तृष्णा का वर्द्धक प्रेम ही है। समझ में आया? इस कारण कहते हैं कि

आयु व्यतीत होती जाती है, फिर भी मन नहीं गलता, तृष्णा नहीं घटती। क्यों नहीं घटती ? कि पर में इसका प्रेम नहीं घटता। तब अब कहते हैं कि (वह) कैसे घटे ?

मुमुक्षु – इतना-इतना सुने और प्रेम नहीं घटे ?

उत्तर – यइ इंकार करते हैं। गुरु का सुने और समझे नहीं तो वह सुना नहीं – ऐसा कहते हैं।

प्रश्न – वह तो स्वयं के ऊपर है न।

उत्तर – किसके ऊपर है ? यह आयेगा। उस ५२ वें में (आता है न) ? किसमें ? ५३ में आता है न ? शास्त्र पठन (भी) आत्मज्ञान के बिना निष्फल है। गुरु के पास सुने तो भी निष्फल है; इस आत्मा की अन्तर्दृष्टि के बिना, आत्मा के अन्तर के आनन्द के प्रेम बिना, उसके अनुभव के बिना गुरु के पास सुने या शास्त्र पढ़े – सब निष्फल है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक सैकेण्ड में असंख्यातवें भाग में आनन्द का कन्द है। आहा...हा... ! आनन्द का सरोवर है। समझ में आया ? जैसे, मृगमरीचिका में पानी नहीं, परन्तु सरोवर में पानी है; वैसे ही जगत के किसी पदार्थ में आत्मा को सुख नहीं है; आत्मा में सुख है। समझ में आया ? ऐसे आत्मा में अन्दर में आनन्द है – ऐसा प्रेम किये बिना, बाहर के प्रेम के कारण यह अनन्त काल से.... भले ही यह शुभराग – दया, दान, व्रत के परिणाम हों परन्तु भगवान आत्मा से विरुद्ध परिणाम का प्रेम, इसे तृष्णा-वर्द्धक है। पण्डितजी ! हरिप्रसादजी ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा.... यह कहते हैं। **आत्मा का प्रेमी निर्वाण का पात्र है।** है ? देखो !

जेहउ मणु विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ॥५०॥

बहुत संक्षिप्त भाषा ! योगी महात्मा योगीन्द्रदेव सन्त दिगम्बर महात्मा हैं। (वे) कहते हैं कि हे योगी ! हे आत्मा का जुड़ान करनेवाले ! पर का प्रेम छोड़कर, पुण्य-पाप का, शरीर, मन, वाणी, सारी दुनिया, आत्मा के अतिरिक्त सबका प्रेम छोड़कर जिसे

आत्मा आनन्दकन्द का प्रेम लगा, उसे यहाँ योगी, उसे यहाँ धर्मी कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं, हे धर्मी! **जैसे मन विषयों में रमण करता है....** जैसे तेरा मन पाँच इन्द्रियों के शब्द, रूप, रस, गन्ध में रुचि करके रमता है.... समझ में आया? आत्मा अन्तर ज्ञायक चिदानन्दस्वभाव के अतिरिक्त, जो मन अन्तर के-आत्मा के प्रेम अतिरिक्त पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा की अन्तर जिसे रति, रुचि और प्रेम नहीं है, उसे पुण्य-पाप और बन्ध व उसके फल में उसका प्रेम है, तो कहते हैं कि जैसा प्रेम तुझे पर में है, वैसा प्रेम यदि आत्मा में करे (तो) अल्पकाल में तेरी मुक्ति होगी। कहो, समझ में आया?

मणु जेहउ विषयहं रमइ विषय शब्द से अकेले भोग आदि, ऐसा नहीं; आत्मा के अतिरिक्त शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सब, हाँ! आहा...हा...! जैसा शास्त्र के शब्दों को सुनने का प्रेम है, वह प्रेम भी पर में जाता है। हरिप्रसादजी! आहा...हा...! जैसा प्रेम इसे शब्द में, रूप में, गन्ध में, स्पर्श में, देव-शास्त्र-गुरु में या स्त्री, कुटुम्ब-परिवार में या आत्मा के अतिरिक्त किसी भी कर्म और शरीरादि में जैसा मन वहाँ लीन होकर रमता है.... यहाँ ऐसा कहना है कि वह तेरा ही पुरुषार्थ है कि जहाँ पर में तू रमता है – ऐसा कहते हैं। उसमें कहीं किसी कर्म-बर्म का याद नहीं किया। समझ में आया? है न?

जैसे मन, विषयों में रमण करता है, यदि उसी प्रकार यह मन, आत्मा के ज्ञान में रमे तो.... एक ही सिद्धान्त है। भगवान आत्मा पूर्ण शान्त, आनन्द का रस है, उसका जिसे प्रेम नहीं लगा और जिसे प्रेम इन बाह्य पदार्थों में उल्लसित वीर्य से जहाँ अटका है, कहते हैं कि जैसे भाव से पर में प्रेम से अटका है, (वह) तेरे उल्टे पुरुषार्थ से (अटका है), कर्म के कारण नहीं, किसी (अन्य) के कारण नहीं। भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द की मूर्ति प्रभु की ओर का प्रेम छोड़कर, इसको-बाहर की चीज के प्रेम में जिसका मन लीन हो गया है, ऐसी लीनता तूने तेरे उल्टे पुरुषार्थ से की है। ऐसा ही उल्टा पुरुषार्थ जैसे ऐसा किया ऐसा जो गुलांट खा... गुलांट अर्थात् आत्मा के आनन्द में प्रेम कर तो क्षणमात्र में तेरी मुक्ति होगी। समझ में आया?

तुलसीदास कहते हैं – 'जैसी रति हराम से, तैसी हरि से होय, चला जाए बैकुण्ठ

में, पला न पकड़े कोई।' आता है या नहीं ? 'जैसी रीति हराम से' – पैसा, पाँच रुपये मिलें, दस रुपये मिलें, स्त्री अनुकूल बोल, वहाँ (फूल जाता है कि) आहा...हा...! पूरा होम हो जाता है, पूरा होम हो जाता है! स्वाहा! किसमें ? इस पुण्य और पाप, राग और तृष्णा में स्वाहा (हो जाता है)। उसमें भगवान का धुआँ होता है। आहा...हा...! बल्लभदासभाई!

भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसका प्रेम छोड़कर, जैसी लीनता पर में लगी, वैसी लीनता यदि तुझमें (सब में) करे, यह तेरे अधिकार की बात है। कर्म घटे और अमुक हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहा...हा...! यहाँ तो भाई! कर्म को याद भी नहीं किया। तू ऐसे (रमता है), वैसा ऐसे (स्व में) रम – ऐसा कहा है। यह कहते है, कर्म इसे रोकते है, कर्म घटे तो कुछ मोक्ष का मार्ग होवे.... आहा...हा...! भाई! तेरे शान्तरस का तुझे प्रेम नहीं है। समझ में आया ?

आनन्दघनजी एक जगह कहते हैं, अपने आता है, नहीं ? निर्जरा अधिकार में (आता है)। जहाँ रति.... निर्जरा अधिकार.... २०६ (गाथा) एक बार कहा था। पालीताना में कहा था, एक बार अहमदाबाद में कहा था। रति... रति... हे आत्मा! आत्मा में रति कर। आत्मा में रति कर का अर्थ यह कि देह की क्रिया मुझे लाभदायक है, पुण्य-पाप के परिणाम मुझे लाभदायक है (ऐसा जो मानता है), उसे आत्मा में रति नहीं है। समझ में आया ? तेरा प्रेम पर ने लूट लिया है। एक जरा अनुकूल प्रतिष्ठा हो, बाहर प्रसिद्धि हो, बाहर में इसके गुणगान गाये जाते हों, बाहर प्रसिद्धि के लिए मथ जाये, वह मथ जाता है, पूरी जिन्दगी चली जाती है। पाँच-पाँच, पच्चीस-पच्चीस वर्ष पैसा कमाने में, उसकी वासना में उसे प्रसिद्धि पाने में, इसकी कुर्सी सामने आगे लेने का कितना प्रेम है कि जीवन आत्मा को खोकर, आत्मा को खोकर और खो जाये परन्तु पर का प्रेम नहीं छोड़ता। कहो, रतिभाई!

मुमुक्षु – लुटेरे प्रेम लूट ले जायें, उसमें यह क्या करे ?

उत्तर – यह लुटता है। लूटे कौन ? आहा...हा...!

जैसा मन... समझ में आया ? यह कहा न, रति का ? आनन्दघनजी एक जगह

कहते हैं 'कहाँ दिखाऊँ और को कहाँ दिखाऊँ भोर, तीर अचूक है प्रेम का लागे रहे सो ठोर, कहा दिखाऊँ और को' – इस आत्मा का प्रेम, आत्मा शुद्ध चैतन्य की अन्तर की दृष्टि के प्रेम को दूसरे से क्या कहें ? कहते हैं और 'कहाँ दिखाऊँ भोर' इसके प्रकाश की महिमा किसे दिखायें ? 'तीर अचूक है प्रेम का' यह अचूक तीर का प्रेम लगा, अन्दर भगवान आत्मा के ऊपर.... 'लागे रहे सो ठोर' इस आत्मा का प्रेम हुआ, (इसलिए) वहीं इसकी रुचि बारम्बार जाती है। संसार के प्रेमी संसार की कोई भी विविध प्रकार की चीजें देखकर (उनमें प्रेम करते हैं)। समझ में आया ?

खाने बैठा हो और विविध प्रकार के नमूने खाने में परोसे तो वहीं इसे लक्ष्य रहता है। यह क्या आया ? चावल आये, क्या कहलाते हैं तुम्हारे ? चावल को क्या कहते हैं ? तुम्हारे लड़के चावल खाते हैं वह क्या ? इस आम के साथ यहाँ नहीं देते थे ? चिवड़ा। यह विविध नमूने ऐसे देखता है कि इसमें चिवड़ा आता है ? इसमें आम के टुकड़े आते हैं ? इसमें मौसम्बी का रस रखा है या दूसरा पानी रखा है ? यह विविध प्रकारों का प्रेम है (इसलिए) वहाँ देखा करता है। समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा के अतिरिक्त विविध प्रकार के पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के बन्धन और बन्धन के अनुकूल-प्रतिकूल बाह्य फल.... मूढ़ बाहर की प्रीति के प्रेम में भगवान आत्मा की प्रीति खो (बैठा) है। भले बाहर में त्यागी हुआ हो परन्तु जिसे अन्दर में बाह्य के राग में पुण्य, दया, दान का विकल्प उत्पन्न होता है, उसका जिसे प्रेम है, वह पूर्ण भोगी है, योगी नहीं – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! हे जोगिया ! कहा न ? हे जोगिणा ! आहा...हा... !

भगवान आत्मा अन्दर परमात्मा के तेज और नूर व आनन्द से भरा हुआ तेरा तत्त्व है। उसके प्रेम में एक क्षण भी प्रेम कर तो तेरा संसार – जन्म-मरण का नाश हो जाएगा – ऐसा जिसका प्रेम ! ऐसा परमात्मा अन्दर में तू विराजमान है परन्तु जैसा प्रेम – पर में लीनता है – ऐसा प्रेम यदि इसमें (आत्मा में) करे तो क्षण में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति हुए बिना नहीं रहे। है न ?

जैसे (मन) विषयों में रमण करता है यदि उसी प्रकार यह मन आत्मा के

ज्ञान में रमे तो.... 'तिसु अप्प मुणेई' ऐसा शब्द है न ? आत्मा, भगवान आत्मा, जिसके तेज के एक समय के ज्ञान में तीन काल-तीन लोक विविध एक तत्त्व के अतिरिक्त जितने तत्त्व हैं, वे सब आत्मा की एक समय की दशा में ज्ञात हो – ऐसे तत्त्व हैं। फिर भी वे तत्त्व मेरे हैं – ऐसा ज्ञात नहीं होता। ऐसे आत्मा के चैतन्य के प्रेम में देख तो पूरी दुनिया तुझे अन्दर में प्रेम रहित (दिखेगी), उसका प्रेम कहीं लगेगा नहीं। ज्ञातादृष्टा होकर जगत की चीजों का जानने-देखनेवाला होगा, यह जानने-देखनेवाला हुआ, उसे पुण्य और पाप के भाव में भी प्रेम उड़ गया है। फिर यह साधन मुझे अनुकूल है और यह साधन प्रतिकूल है – ऐसा आत्मा के स्वभाव के प्रेम में यह बात नहीं रहती है। समझ में आया? आहा...हा...! **मन आत्मा के ज्ञान में रमे तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त कर ले।** तो अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करे और मुक्ति पाये।

योगीन्द्र आचार्य योगी अर्थात् धर्मात्मा... योगी अर्थात् जिनका झुकाव बाह्य के झुकाव से छूटा है और जिनका झुकाव-दिशा आत्मा की तरफ हुई है – ऐसा धर्मी सम्यग्दृष्टि से लेकर (समस्त धर्मात्मा) जीवों को कहते हैं कि अरे! **मन को गाढ़भाव से अपनी आत्मा में रमाना चाहिए। तभी वीतरागता के प्रकाश से शीघ्र निर्वाण का लाभ होगा।** पहला पद ले लिया क्योंकि **आत्मवीर्य के प्रयोग से ही प्रत्येक कार्य का पुरुषार्थ होता है।** ऐसा कहते हैं, देखो! **अज्ञानी जीव पाँचों ही इन्द्रियों के विषयों में जितनी आसक्ति से रमता है....** यह भी वीर्य से (पुरुषार्थ से) है – ऐसा कहते हैं। तेरे उलटे पुरुषार्थ से पाँच इन्द्रियों के विषयों में एकाकार (होता है)। अरे... वाणी सुनने में एकाकार (हो जाता है), वह भी तेरे पुरुषार्थ की पर में उल्टी उग्रता है – ऐसा कहते हैं। हैं? भावनगर से सुनने आते हैं।

वीतराग ऐसा कहते हैं कि सुनने के प्रेम को भी छोड़। आहा...हा...! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय... हिरण की नाभि में कस्तूरी है परन्तु उसे कस्तूरी का पता नहीं है; इसी प्रकार यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सरोवर... सरोवर... सागर अन्दर है। आहा...हा...! उसके प्रेम को छोड़कर पर में एकाकार (होकर) झुलस गया है। अतः एक बार गुलांट खा। पर का प्रेम छोड़कर यहाँ प्रेम कर! अपना प्रेम कर तो परमात्मा हुए बिना नहीं रहेगा। आहा...हा...! कहो, शशीभाई! समझ में आया?

पाँच इन्द्रियों के दृष्टान्त दिये हैं न ? जैसे हाथी स्पर्श में वशीभूत हो गया है न ? हाथी स्पर्श इन्द्रिय में वशीभूत हो गया है; मछली रस में (वशीभूत हो गयी है)। मछली को (खाने में) रस होता है न ? खाने में जरा आटा दे तो भी उसमें रस (आता है)। मछली को जाल में डालते हैं न ? पानी में लोहे का कटिला जाल होता है न ? उसमें आटा डालते हैं, आटा खाने आवे तो मछली वहीं पड़ जाये ऐसी लीन हो गयी है, मछली रस में लीन हो गयी है। भँवरा, कमल में (लीन हुआ है)। कमल इतना हो उसमें लिपट जाता है, बन्द हो जाता है, रसलीन हो गया है। फिर हाथी आकर पूरा कमल खा जाता है परन्तु उसके प्रेम को नहीं छोड़ता और पतंगा, दीपक की ज्योति में (लीन होता है)। लो, समझ में आया ? पतंगा दीपक की ज्योति में भस्म हो जाता है। ऐसी बत्ती देखे तो.... ऐसा जाये। विषय के प्रेम में पूरा शरीर भस्म हो जाये तो भी उसे पता नहीं रहता। कहते हैं कि यदि ऐसा प्रेम आत्मा में करे, वह भी तेरे पुरुषार्थ की गति का ही कार्य है। शरीर भस्म अर्थात् शरीर का कुछ भी हो परन्तु तुझे वहाँ नुकसान नहीं होगा। आहा...हा... ! समझ में आया ? हिरण जंगल में पकड़े जाते हैं। लो न ! कान का (संगीत का) शौकिन है न ? सुनने में ऐसा लीन हो जाता है ऐसा ! वीणा बजाते हैं फिर मृग को मारते हैं। मृग ऐसे सुनने बैठा हो, ऐसे मुक्का मारते हैं। लीन हो गया है लीन, कहते हैं। समझ में आया ?

दिन-रात आत्मा का ही स्मरण करना चाहिए। कहते हैं, जैसे इन पाँच इन्द्रियों के विषयों में, एक-एक में जैसे पाँचों लीन है, वैसे आत्मा में इसे लगन लगनी चाहिए। सम्यग्दर्शन में इसकी लगन लगे... सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं कि आत्मा अखण्डानन्दमूर्ति की इसे अन्दर में लगन लगी हो। समझ में आया ?

मुमुक्षु – दूसरे रस का वेदन तो इसे ख्याल में है।

उत्तर – ख्याल में है परन्तु यह चीज है या नहीं ऐसी ? ख्याल में इसने क्या खड़ा किया है, वहाँ कहाँ ख्याल में है ? प्रतिक्षण नया खड़ा करके यह... यह है, त्रिकाली ऐसा है, उसका इसे लक्ष्य नहीं है। क्षण में वेदनेवाला है कौन ? स्वयं त्रिकाली है। बात (यह है कि) इसे पड़खा बदलना नहीं आता।

भगवान आत्मा.... जैसा प्रेम वहाँ है... यह वेश्या की आसक्ति (होती है), परस्त्री

के लम्पट की कितने आसक्त होते हैं, देखो न ! हैं ? आहा...हा... ! देखो न ! एक आता है न ? उन सूरदास का नहीं आता। वे थे न ? वेश्या के पास जाते, सर्प था, वेश्या के घर जाते सर्प था, उन्हें ऐसा लगा कि रस्सी है, ऐसा विचार कर सर्प को पकड़कर अन्दर गया, ऊपर चढ़ गया ! हैं ? सर्प है या रस्सी, भूल गया, वेश्या के प्रेम में... आता है या नहीं ? शशीभाई ! हमने तो सब सुना है, हमने कहीं ऐसा पढ़ा नहीं है। ऐसा प्रेम ! फिर उसने आँखें फोड़ डाली परन्तु आँखें फोड़ने से क्या होता है ? समझ में आया ? अपने को यह रूप नहीं देखना, यह रूप (नहीं देखने के लिये) आँखें फोड़ डालो परन्तु आँखें कहाँ रोकती हैं ? वे तो जड़ हैं तेरा प्रेम पर में है, इसे छोड़ने के लिए अन्तर में प्रेम कर, तब बाहर की आँखें फोड़ी कहा जाएगा। आँखें, बाहर का क्या काम है वहाँ ?

कहते हैं, **आत्मा के रस में ऐसा रसिक हो जाना चाहिए कि मान-अपमान....** बहुत बोल लिये हैं न ? जीवन-मरण, कंचन सुख में समानभाव रखना चाहिए। **जैसे धतूरा खानेवाला प्रत्येक जगह पीला रंग देखता है....** देखो ! धतूरा पीनेवाला सब चीजों को पीली देखता है। इसी प्रकार धर्मी को सभी चीजें अनित्य और क्षणिक दिखती हैं। एक नित्यानन्द भगवान आत्मा दृष्टि में आने पर सब चीजें क्षणिक, नाशवान् है। मैं अविनाशी आत्मा हूँ, एक अविनाशी मैं हूँ, बाकी सब नाशवान है। समझ में आया ?

शुद्ध निश्चयनय से उसे जिस प्रकार अपना आत्मा परमात्मरूप शुद्ध दिखता है, उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा परमात्मरूप शुद्ध दिखता है। निश्चय से, हाँ ! निश्चयदृष्टि से जैसा अपना आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित ज्ञात होता है, वैसी ही दृष्टि से दूसरे आत्मा को भी वह देखता है। उसका आत्मा उन पुण्य-पाप के राग, शरीर, कर्मरहित (है), उसे आत्मा जानता है। समझ में आया ? अपना भगवान आत्मा शुभ-अशुभ राग, बन्धन और फल रहित है – ऐसी दृष्टि जहाँ धर्मात्मा को (हुई).... योगसार अर्थात् आत्मा के योग की हुई.... वह दूसरे आत्माओं को (भी वैसा ही देखता है)। वह आत्मारूप से तो इसे स्वीकार करता है, दूसरे आत्माएँ भी पुण्य-पाप के रागवाले हैं – ऐसा नहीं। पुण्य-पाप का राग तो आस्रव है। कर्म, शरीर तो अजीव है, उनका आत्मा है, वह तो ज्ञानानन्द अखण्डानन्द प्रभु है। ऐसे धर्मी, अपने आत्मा को जैसे निर्विकारी देखता है, वैसे ही दूसरों

के आत्माओं को भी उनकी स्थिति को निर्विकारी देखता है। समझ में आया? आहा...हा...! शरीर को देखे, परन्तु वह तो जड़ है – ऐसा देखता है। उसके पुण्य-पाप को जाने परन्तु वह तो विकार है – ऐसा जानता है। इसे – आत्मा को जाने तो निर्विकारी आत्मा है – ऐसा उसे जानता है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया?

लोक एक शुद्ध आत्मिक सागर बन जाता है। उसी आत्मसागर में वह आत्मज्ञानी एक मत्स्य हो जाता है। ऐसा कि आत्मा के आनन्द में स्वयं शुद्ध के प्रेम में पड़ा है न? (इसलिए) सब आनन्दमय आत्मा है – ऐसा भासित होता है। स्वयं जगत् के आनन्दरूपी सागर का मानो मत्स्य हो – मछली हो जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? **ज्ञानी जीव ऐसा आत्मरसिक हो जाता है कि उसे तीन लोक की सम्पदा जीर्ण तृण के समान दिखती है।** समझ में आया? यह बात की। फिर तो बहुत लिखा है।

पूज्यपादस्वामी का आता है न? **मोक्षार्थी के लिए उचित है....** मोक्ष के अर्थी को यह उचित है कि **आत्मज्योति के विषय में प्रश्न पूछना...** प्रश्न करे तो आत्मा कैसा? आत्मा कैसे प्राप्त हो? आत्मा में क्या है? आत्मा प्राप्त होवे तो उसे क्या दशा हो? समझ में आया? आत्मार्थी – मोक्षार्थी को ऐसे प्रश्न करना चाहिए। आहा...हा...!

मुमुक्षु – हमारा दुःख कब मिटेगा – ऐसा (प्रश्न करना चाहिए)।

उत्तर – दुःख मिटे यह। आत्मा का दुःख कब मिटे? ऐसा। दुःख कहाँ, यह स्त्री-पुत्र का दुःख है? आहा...हा...! उसमें – 'अनुभवप्रकाश' में दृष्टान्त दिया है, नहीं? 'पानी में मीन प्यासी मुझ सुन-सुन हाँसी... पानी में मीन प्यासी।' पानी में मीन प्यासी। अनुभवप्रकाश में दृष्टान्त दिया है न? दूसरे में यह भजन है। एक व्यक्ति था, वह कहता – मुझे आत्मज्ञान दो। एक व्यक्ति एक साधु के पास गया, (जाकर कहा), मुझे आत्मज्ञान दो। तब (साधु ने) कहा – मेरे पास तो नहीं है परन्तु समुद्र में एक मछली है, उसके पास जा, मछली तुझे देगी। (वहाँ जाकर) मछली से कहता है भाई! तुम तो बड़े पुरुष हो, हमें किसी ने कहा है कि तुम (आत्मज्ञानी हो)। (तब) मछली कहती है, हाँ, तुम बड़े पुरुष हो कि मुझे यहाँ ढूँढ़ने आये। मछली ऐसा कहती है – मेरा एक

काम करो। क्या ? मछली कहती है – मुझे थोड़ा-सा पानी लाकर दो, प्यासी हूँ, बहुत वर्षों से प्यासी हूँ, एक पानी का प्याला लाकर दो, पानी का प्याला क्या करना है ? यह पानी नहीं भरा है यह सब ? (मछली कहने लगी) पानी भरा है ऐसा तुम कहते हो ? तब तुम आत्मा ज्ञानरूप नहीं भरे हो ? तुम कहाँ अन्दर से चले गये हो। हैं ? मछली ने उससे कहा, मेरे लिए पानी लाकर दो। फिर मैं तुम्हारी प्यास.... पानी तो तेरे पास है, यह रहा समुद्र, देख! तब तू कौन है ? यह पूछनेवाला, जाननेवाला है कौन ? मछली ऐसे (बाहर) नजर करती है, इसलिए पानी नहीं दिखता, ऐसे (अन्दर) नजर से दिखता है। इसी प्रकार यह अनादि का आत्मा पुण्य और पाप, राग और द्वेष, देहादि की क्रिया बाहर को देखता है परन्तु अन्दर में चिदानन्द जल से भरा हुआ समुद्र है, उसे नहीं देखता। समझ में आया ?

भगवान आत्मा.... यह पानी में मीन प्यासी। बल्लभदासभाई ! इसी प्रकार आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है, अनाकुल आनन्द और ज्ञान का सागर अन्दर है परन्तु नजर करें तब न ? इसे नजर करने का समय नहीं मिलता। आहा...हा... ! समझ में आया ? इसलिए कहते हैं – इस आत्मा का प्रश्न करना, आत्मा की **इच्छा करना....** चाह अर्थात् इच्छा; आत्मा का **दर्शन करना।** इसकी लगन लगाना, दूसरी लगन छोड़कर; विकार और फल और अमुक की, ऐसा पुण्य किया और उसका फल क्या आएगा ? छोड़ न होली अब.... भगवान आत्मा सच्चिदानन्दमूर्ति है, अनाकुल आनन्द का समुद्र है, वहाँ देख। वहाँ तुझे शान्ति मिले ऐसा है। बाहर के क्रियाकाण्ड में कहीं धूल भी नहीं है। समझ में आया ? यह दया, दान, भक्ति का परिणाम यह सब राग के भाव हैं। इस राग में आत्मा नहीं है। इसमें धर्म नहीं और राग में आत्मा भी नहीं, इसका प्रेम छोड़कर आत्मा का प्रेम कर। अब, (५१ वीं गाथा में) जरा शरीर की जीर्णता बतलाते हैं।

☆ ★ ☆

शरीर को नरक घर जानो

जेहउ जज्जरु णरय-घरु, तेहउ बुज्झि सरीरु।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, लहु पावहि भवतीरु ॥५१॥

नर्कवास सम जर्जरित, जानो मलिन शरीर।
करि शुद्धातम भावना, शीघ्र लहो भवतीर॥

अन्वयार्थ – **(जेहउ णरय-धरूज्जरू)** जैसा नरक का वास आपत्तियों से जर्जरित है **(तेहउ सरीरू बुज्झि)** तैसे ही शरीर के वास को समझ **(णिम्मलउ अप्पा भावहि)** निर्मल आत्मा की भावना कर **(लहु भवतीरू पावहि)** जिससे शीघ्र ही संसार से पार हो।

☆ ★ ☆

शरीर को नरक घर जानो। ऐसा लिखा है, पाठ में दूसरा है।

जेहउ जज्जरु णरय-घरु, तेहउ बुज्झि सरीरु।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, लहु पावहि भवतीरु॥५१॥

यह किसलिए कहते हैं ? भगवान अनाकुल आनन्द के प्रेम में, कहते हैं कि यह शरीर नरक के घर जैसा जर्जरित तुझे दिखेगा। नव द्वार से मल, मूत्र, थूक, चारों ओर से पसीना झरे – ऐसी यह धूल है। भगवान आत्मा आनन्द का कन्द है। आहा...हा...! कहो, बल्लभदासभाई! आत्मा आनन्द सच्चिदानन्द सत् शाश्वत्, शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का सागर, सरोवर है भगवान, उसके प्रेम के बिना तुझे यह शरीर मीठा लगता है। चाट लें, शरीर का मानो भोग ले, क्या करे, मानो सुन्दर लगे, ऐसा करें, क्या है परन्तु ? यह तो हड्डी है, चमड़ी है, माँस है, खून है, पीव है। एक गन्ने जितनी जरा सी चमड़ी उतर जाये, गन्ने की छाल। शेरड़ी समझते हो, गन्ना... गन्ना। एक छिलका उतरे तो पता पड़े। थूँकने के लिए खड़ा न रहे। कहता था न – मेरे भोग के लिए है, बहुत सुन्दर शरीर अद्भुत, मक्खन जैसा! धूल में भी नहीं, मूर्ख! तेरे शरीर में तो हड्डियाँ और चमड़ी भरी है अकेले। आहा...हा...!

'जेहउ णरय घरु जज्जरु' यहाँ तो **शरीर को नरक की उपमा दी है।** आहा...हा...! **जैसे नरक में सर्व अवस्थाएँ खराब और ग्लानि उपजानेवाली होती है....** नीचे नरक है न नारकी ? यह माँस और शराब खाने (पीनेवाले) लम्पटी मरकर नरक में जाते हैं।

समझ में आया ? यह महाराज, यह राजा, सब कहलाते हैं न ? सब मोटर-वोटर चलनेवाले... लाखों-करोड़ों मनुष्यों को मारें, मछलियों को मारें, माँस खायें, शराब पिये, परस्त्री के लम्पटी – ये सब नरक के मेहमान होते हैं। मार खाने के लिए... यहाँ तो खम्बा-खम्बा होती हो, सब मरकर नीचे गये। यह राजा, महाराजा, सब वहाँ (गये हैं), हाँ! वहाँ जार्ज -वार्ज और एडवर्ल्ड और सब। आहा...हा... ! और साढ़े तीन करोड़, पाँच-पाँच करोड़ के बंगले में सोते हों, हैं ?

मुमुक्षु – देरी क्या ? किसकी लगे ?

उत्तर – किसकी लगे ? पानी का पत्थर बड़ा भारी हो, वह पानी में साथ पड़े नीचे। इसी प्रकार अकेला पाप। आत्मा को भूलकर नरक का पाप (किया हो) यह पाप का बोझ बढ़ा वह नीचे नरक में जाता है। कहते हैं कि उसकी प्रतिकूलता नरक में (बहुत है)। ऐसा यहाँ तो शरीर का वर्णन करना है, हाँ! जैसे ग्लानिकारक है, खराब है, मल-मूत्र से भरपूर है, नारकी.... खारा पानी, अंग छेद इत्यादि-इत्यादि... नरकवास में क्षण भर भी साता नहीं है। कोई उसमें सुखकारी नहीं है – ऐसा।

मानव का यह शरीर भी नरक जैसा है। लो! यहाँ तो यह उपमा दी, देखो! आहा...हा... ! क्या कहना चाहते हैं आचार्य ? कि जैसे नरक में उत्पन्न होनेवाले, बड़े महाराजा मरकर नरक में गया हो तो हाय...हाय... ! अर...र... यह क्या है ? उसे पूर्वभव का पता नहीं होता कि मैं एक राजा था और मरकर (यहाँ) आया हूँ। अर...र... क्या है यह ? जहाँ उत्पन्न हो वहाँ सिर पर मधुमक्खी का छत्ता होता है। मधुमक्खी का छत्ता जैसा उत्पत्ति का स्थान होता है वहाँ उत्पन्न होता है और उत्पन्न हो साथ में नीचे छत्तीस प्रकार के शस्त्र होते हैं। नीचे छत्तीस प्रकार के शस्त्र, उसमें गिरे एकदम! टुकड़े। यहाँ अभी महाराज को डोलिया में निकालते हों, बड़े राजा आदि को डोलिया में निकालते हैं। डोलिया... डोलिया, समझते हो ? बड़ा पलंग हो, हाथ में हुक्का दिया हो, सिर पर पगड़ी बँधायी हो... क्या कहलाता है उसकी ? पालकी! यहाँ पालकी निकलती हो, वहाँ नरक में पोढ़े हों। हाय... ! अरे! यह अवतार क्या है यह ? यह क्या है ? कितने काल (रहना है) ? कैसी स्थिति ? दूसरे परमाधामी आते हैं (और कहते हैं) यह नरक का स्थान है पापी! तुमने पाप किया,

इसलिए यहाँ अवतार लिया है। जैसे यह नरक का शरीर है, अथवा नरकस्थान अच्छा नहीं लगता; उसी प्रकार यह शरीर नरक जैसा है – ऐसा यहाँ बतलाना है। आहा...हा...! दूसरी बात तो कहीं रह गयी।

यहाँ तो आत्मा के सामने एक शरीर रखा। शरीर '**जज्जरु**' नरक के स्थान जैसा है। कहो, समझ में आया? देखो, इसमें जरा लिखा है, **शरीर के ऊपर से त्वचा को हटा दिया जावे तो स्वयं को इस शरीर से घृणा हो जाएगी....** जरा चमड़ी उतारे, वहाँ आहा...हा...! दुर्गन्ध लगती है। ऐसा मानो चाट लूँ या खा लूँ, क्या करूँ? इसे ऐसा लगे, इसे जरा चमड़ी उतारकर दिखावे तो आहा...हा...! ऊँ हू.... इसके भाग (टुकड़े) करके दे, एक तपेली में माँस, एक में इसका खून, एक में इसकी चमड़ी, एक में इसकी हड्डियाँ, एक में दाँत (ऐसे) सब अलग भाग बतावे (तो) ऐसा कहे। अर...र...! यह शरीर? तब यह शरीर किसका शरीर है?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है, आहा...हा...! ऐसा बतलाने के लिए बात की है, हाँ! घृणा या द्वेष कराने के लिए नहीं। भाई! तू अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है न, प्रभु! उसका प्रेम छोड़कर तुझे ऐसे नरक के जैसे शरीर के प्रेम में फँसकर जिन्दगी बिताता है, इसी में। चौबीस घण्टे इसी की सम्हाल, इसे खिलाना, इसे पिलाना, इसे नहलाना, इसे धुलाना और सुलाना.... प्रातः हो, वहाँ वापस यह (सब)। यह भी तेरा समय चला जाता है, यह होली नरक जैसा शरीर है। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ऐसे आनन्दकन्द के सन्मुख देखे बिना इसी-इसी में तेरा (जीवन) जाता है। आहा...हा...! समझ में आया?

करोड़ों रोगों का स्थान है। कहो! **शरीर में बालपना परवशरूप से (पराधीनता से) बहुत ही कष्ट से बीतता है।** एक तो शरीर का बालकपना हो, बालकपना होता है न शरीर का? (वह) पराधीनता में जाता है। **युवानी में घोर तृष्णा शान्त करने के लिए धर्म की भी परवाह नहीं करता....** युवावस्था में कमाने का होता है, बस! कमाओ... यहाँ जाओ, यहाँ जाओ, यहाँ जाओ, भटको...! वृद्धावस्था में अशक्त होकर घोर शारीरिक और मानसिक वेदना सहता है। लो!

इस मनुष्य शरीर से ऐसा साधन हो सकता है कि फिर कहीं भी शरीर धारण नहीं करना पड़े। कहते हैं कि ऐसा नरक के स्थान जैसा नरदेह है परन्तु इसमें यदि आत्मा अपना साधन करे तो फिर देह नहीं मिलती। फिर से शरीर नहीं मिलता – ऐसा यहाँ आत्मा में साधन है। आहा...हा...! परन्तु यह आत्मा क्या? इसे माहात्म्य नहीं आता। किञ्चित् यह दया पालन करूँ, यह व्रत पालूँ, भक्ति करूँ और पूजा करूँ, शरीर करूँ, यात्रा करूँ और वह करूँ, भोग करूँ – ऐसी क्रियाकाण्ड और राग को देखने में इसकी जिन्दगी जाती है। भगवान की भक्ति वह राग है, वह शुभराग है। ए... माँगीरामजी! भगवान की भक्ति शुभराग है, हिंसा है। भले ही आवे परन्तु है हिंसा... आत्मा की हिंसा होती है। ए... जगजीवनभाई! परन्तु यह क्या हाँ जी करते हो? भगवान की भक्ति हिंसा? कोई करेगा नहीं। सुन न! करे न करे, वह भाव आये बिना रहेगा नहीं परन्तु वह भाव-भगवान की भक्ति का भाव भी शुभराग है। शुभराग भी स्वभाव की हिंसा (करता है।) आहा...हा...! कहते हैं कि तेरा प्रेम वहाँ लूट गया, यहाँ तो देखता नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। यह सब शरीर का राग, बाहर का राग-प्रेम में तू लुट गया। तुझे आत्मा भगवान सच्चिदानन्दप्रभु, सिद्धसमान सदा पद मेरो – ऐसे आत्मा के प्रति तो तुझे प्रेम, रति और रुचि हुई नहीं। रति, रुचि हुए बिना तेरे जन्म-मरण मिटनेवाले नहीं हैं।

परन्तु यह बात तो जैसे हो वैसे आयेगी न। एई... निहालभाई! भाव आता अवश्य है... भक्ति, पूजा, दया, दान का शुभभाव (आता अवश्य है)। परन्तु वह शुभराग कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं है। यहाँ तो स्वभाव के प्रेम की बात चलती है; इसलिए स्वभाव से विरुद्ध भाव का प्रेम, रुचि मिथ्यात्वभाव है। यह राग-भक्ति (स्वयं) मिथ्यात्वभाव नहीं है परन्तु राग में धर्म-आत्मा का निश्चय से कल्याण होगा – ऐसी मान्यता को भगवान, मिथ्यात्व कहते हैं। आहा...हा...! ए... जयन्तीभाई! तुम्हारे तो कहाँ मूर्तिपूजा थी? ठीक है, परन्तु इन मूर्ति पूजावालों को विवाद उत्पन्न हो ऐसा है। तुम्हारे (तो) भगवान की माला जपते हैं, लो न! णमो अरिहन्ताणं.... णमो अरिहन्ताणं... वही का वही है। माला गिने तो भी शुभराग है; यह राग है, वह आत्मा के स्वभाव की हिंसा है। ए... माँगीरामजी! अर...र...! हैं?

यह राग है, वह आत्मस्वभाव का प्रेम कराकर छुड़ाना है। आहा...हा...! यहाँ तो

आत्मप्रेम की बात चलती है, उसके समक्ष शरीर को नरक जैसा सिद्ध किया। देखो न! आहा...हा...! नव द्वार झरते हैं। इसके परिणाम में भी विकार है। मेरा प्रभु आत्मा है, उसमें वह कहाँ है। समझ में आया? और इस शरीर की क्रिया हम (करते हैं).... शरीर धर्म साधन.... 'शरीर आध्यं खलु धर्म साधनं'.... यहाँ तो कहते हैं नरक का द्वार, स्थान है। साधन कहाँ से होगा? शरीर अच्छा होवे तो धर्म साधन होता है.... धूल में भी नहीं होता। शरीर से धर्म होता है – ऐसा तुझसे किसने कहा? समझ में आया? अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का शुभभाव हो, उससे धर्म नहीं है तो फिर शरीर से धर्म कहाँ से लाया? तुझे आत्मा के स्वभाव का प्रेम नहीं, भगवान आत्मा वीतरागकन्द है, उसकी तुझे श्रद्धा नहीं – ऐसा यहाँ कहते हैं। देखो!

मुमुक्षु – कहने में कुछ बाकी नहीं रखा।

उत्तर – बाकी नहीं रखा?

हे मूर्ख! अन्तिम है.... **यह तेरा शरीररूप घर, दुष्ट कर्म शत्रुओं का बनाया हुआ...** है, वह कैदखाना है। इसमें अन्तिम है। **हे मूर्ख! यह तेरा शरीररूप घर, दुष्ट कर्म शत्रुओं द्वारा बनाया हुआ एक कैदखाना है, इन्द्रियों के बड़े पिंजरे से बना हुआ है।** इन्द्रियों के बड़े पिंजरे में कैद किया है। **नसों के जाल से लिपटा हुआ है....** नसों की जाल यह... नसें हैं न नसें? **खून और माँस से लिप्त है....** खून और माँस से यह शरीर अन्दर पूरा सब लिप्त है। **चमड़े से ढँका हुआ गुप्त है....** यह चमड़े से ढँका हुआ है। **आयुष्यकर्म की बेड़ी से बँधा हुआ है।** आयुकर्म है, तब तक शरीर छूटेगा नहीं। **ऐसे शरीर को कैदखाना जान, व्यर्थ प्रेम करके पराधीनता के कष्ट मत उठा। इसमें से बाहर निकलने का यत्न कर।**

ऐसा शरीर धूल-मिट्टी.... भगवान अन्दर चैतन्य आनन्दकन्द है, उसका प्रेम छोड़कर तुझे यह प्रेम होता है, उसे छोड़ दे! आत्मा का कल्याण करना हो तो देह चाहे जिस पर्याय में वर्तता हो, वह जड़ है। चाहे जिस प्रकार वर्तता हो – निरोगता, रोगीपना, सरोगता, वाणी निकलती हो – यह सब परचीज है। भगवान आत्मा निर्विकल्प चैतन्यतत्त्व का प्रेम करके इस शरीर में उपजना छोड़ दे। समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु – हमारी जेल बहुत अच्छी है, हमारी जेल बहुत मजबूत है – ऐसा कोई नहीं कहता।

उत्तर – अच्छी कहता है, मेरा शरीर बहुत अच्छा है – ऐसा नहीं कहते ? हमारा शरीर मजबूत है, हमें तो कभी रोग नहीं हुआ, साठ वर्ष हुए परन्तु सोंठ नहीं लगाई, बहुत मूर्ख बोलते हैं। सब सुना है या नहीं ? साठ-साठ वर्ष हुए तो भी कभी सोंठ नहीं लगाई, परन्तु किसका गर्व करते हो तुम ? यह सड़ेगा उस दिन इसमें कीड़े पड़ेंगे.... यह कहाँ आत्मा है तो सड़े नहीं। समझ में आया ? साठ वर्ष तक कभी रोग नहीं आया, बुखार नहीं आया.... अब आवे वह अलग बात – ऐसा बहुत से कहते हैं। बहुत से वृद्ध ऐसा (कहते) सुने हों। हैं ? तुम्हारे पिता को कैसा होगा ? हैं ? उन्हें ऐसा था, ऐसा बहुत होता है। हमने बहुत लोगों को देखा है। साठ वर्ष हुए कभी सोंठ नहीं लगाई। यह क्या है परन्तु अब ? ऐसा हमारा शरीर अच्छा, धूल भी नहीं, सब सड़ा हुआ चमड़ा है। ऐसी महिमा इसकी करता है परन्तु तुझे आत्मा की महिमा नहीं रुचती।

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द अन्दर प्रभु विराजमान है। अनादि-अनन्त सनातन सत्य प्रभु आत्मा है, उसके प्रेम के समक्ष इसका प्रेम नहीं रहता। इसका प्रेम क्या ? इसके लिए तो इसे नरक की उपमा दी है। हैं ?

☆ ★ ☆

जगत प्रपंचों में उलझा प्राणी आत्मा को नहीं पहचानता

धंधइ पडियउ सयल जगि, णवि अप्पा हु मुणंति।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति॥५२॥

जग के धन्धे में फँसे, करे न आतम ज्ञान।
जिसके कारण जीव वे, पाते नहिं निर्वाण॥

अन्वयार्थ – **(सयल जगि धंधइ पडियउ)** सब जग के प्राणी अपने-अपने धन्धों में, लोक व्यवहार में फँसे हुए हैं, तल्लीन है **(अप्पा हु णवि मुणंति)** इसलिए निश्चय से आत्मा को नहीं मानते हैं **(तहिं कारणि ए जीव णिव्वाणु ण**

हु लहंति फुडु) यही कारण है कि जिससे ये जीव निर्वाण को नहीं पाते – यह बात स्पष्ट है।

☆ ★ ☆

५२ – **जगत प्रपंचों में उलझा प्राणी आत्मा को नहीं पहचानता।** देखो यह आया।

धंधइ पडियउ सयल जगि, णवि अप्पा हु मुणंति।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति॥५२॥

जगत के सब प्राणी अपने-अपने धन्धों में-व्यवहार में फँसे हुए हैं.... कोई कमाना, कोई खाना, कोई पीना, कोई भोग, समझ में आया? दुनिया में प्रसिद्धि में पड़ना – कुर्सी पर बैठना, प्रतिष्ठा पाना सबके आगे सबसे बड़ा हुआ दिखना इस धन्धे में पड़े हुए हैं। त्यागी नाम धरानेवाले भी पुण्य-दया, दान, व्रत के व्यवहार-धन्धे में पड़े हुए हैं। समझ में आया? उन्हें फुर्सत नहीं मिलती, यह मन्दिर बनाना है और ऐसा कराना है, यह होली, यह सब राग का धन्धा है। समझ में आया?

मुमुक्षु – धन्धा तो छोड़ दिया है।

उत्तर – कहाँ धन्धा छोड़ा? कौन-सा धन्धा परन्तु? जिसे यह बाहर की.... यह कहते हैं। **'धंधइ पडियउ सयल जगि'** पूरा जगत व्यापार-धन्धे (में पड़ा है), राग के धन्धे में पड़ा है फिर कोई अशुभराग का धन्धा कोई शुभराग का धन्धा (करता है)। आत्मा कौन है? उसे देखने और विचारने के लिए चौबीस घण्टे फुरसत में नहीं होता। यह खाना है और यह पीना है। यह नहीं खाना और यह धन्धा, यह दया पालन की और इसकी भक्ति की। मैंने उपदेश दिया उसमें समझे। गया, मर गया – ऐसे का ऐसा कहते हैं। शुभराग के धन्धे में भगवान को खोकर बैठा।

मुमुक्षु – विस्तार विशाल है।

उत्तर – यह विशाल ही है। योगसार है या नहीं? क्या (कहा)? आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव में जुड़ान होवे, उसका नाम योग है; इसके अतिरिक्त रागादि में जुड़ान हो

वह सब (आत्म) योग से विरुद्ध योग है। कहो, इसमें समझ में आया? साधु होकर या त्यागी होकर फुरसत में कहाँ (पड़ता है)? कितने पत्र, कितने कागज, कितने समाचार, कितने तार... उसका यह धन्धा.... यह तो सब पाप का धन्धा है।

मुमुक्षु – इतना परिग्रह लौकिक में भी नहीं होता।

उत्तर – इतने पत्र भी नहीं होते, मलूकचन्दभाई! आहा...हा...! सबेरे से शाम एक तो व्यक्ति रखा हो, इतने पत्र आये? कितने आये? उसे लिखो, यह पत्र इसे लिखो... तेरा धन्धा ही यह है। भगवान कहाँ गया तेरा? कहो, समझ में आया?

जगत् के सभी प्राणी अपने-अपने धन्धे में-व्यवहार में फँसे हुए हैं, तल्लीन हैं, इसलिए निश्चय से आत्मा को नहीं मानते हैं। देखो, वे आत्मा को मानते ही नहीं। जो पुण्य और पाप के राग के प्रेम में फँसे हैं, उन्हें आत्मा क्या है – उसका प्रेम है ही नहीं। समझ में आया? जगत् के धन्धे वाला अशुभभाव के पाप में – यह करूँ और यह कमाया, लड़के हुए, और विवाह किया, यह हुआ कुछ बड़े... वे वहाँ पड़े हैं। त्यागी नाम धरानेवाले... नाम धरानेवाले, हाँ! वे भी शुभभाव के राग में कदाचित् यह किया और यह लिया, यह दिया, यह धूल की उसमें पड़े हैं, वे सब फँसे हुए हैं। 'सांगो कहे सलवाणा, कईं चढ्या कईं पाला' समझ में आया? जेल में पड़े हैं, जेल में।

एक ऊँट को जेल में डाला और एक सेठ को डाला। वह सेठ कहता है (कि) मैं ऊँट के ऊपर बैठा हूँ परन्तु बैठा है जेल में न? समझ में आया? इसी प्रकार वस्त्र बदलकर नग्न होकर बैठे, साधु भी किसका नग्न? वह क्रिया तो जड़ की है और अन्दर में कोई दया, दान का परिणाम हो तो विकार है, वहीं फँसा है। भगवान आत्मा, राग की क्रिया, देहरहित है – ऐसे आत्मा का प्रेम करने का समय नहीं निकालता। हरिप्रसादजी! योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

यह सब पता है। तुम नाचनेवाले और (हम) देखनेवाले। नाचनेवाले को मेहनत पड़ती है, उस देखनेवाले को मेहनत क्या पड़े? हैं? ऐसे नाचता है, देख लिया, हो गया, जाओ! ए...निहालभाई! भाषा कैसी ली है, देखो न!

सकल जगत् – ऐसा लिया है न? '**धंधइ पडियउ सयल जगि**' जग शब्द में सब

– एक-एक लिया, हाँ! हमें धर्मोपदेश करना, हमें दूसरों को सुनाना है, हमें समझाना है, यह भी पूरा राग का धन्धा है। धूल में भी निर्जरा नहीं, निर्जरा कहाँ थी? प्रभावना किसकी? धूल में... राग होता है, उसमें प्रभावना कहाँ आयी? हैं?

मुमुक्षु – दिशा बदली।

उत्तर – किसकी दिशा बदली? वही की वही दिशा है, पर की और पर की दिशा है।

सकल जगत, लिया है। देखो! हैं? '**णवि अप्पा हु मुणंति**' देखो, इसमें आत्मा को देखने-जानने के लिए निवृत्त नहीं होता (आत्मा तो) अत्यन्त निर्विकल्प तत्त्व है। निर्विकल्प तत्त्व.... जिसमें एक विकल्प शास्त्र सुनूँ और शास्त्र दूसरे को कहूँ – इस विकल्प का जिसमें अवकाश नहीं है। आहा...हा...! हरिप्रसादजी! आहा...हा...! यह वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा अन्दर समझकर, अन्दर में समा गये। समझ में आया?

कहते हैं कि जिसे आत्मा का – अन्तर ज्ञानानन्द का प्रेम नहीं है, वह कोई अशुभ के धन्धे में फँसे, कोई शुभराग के व्यवहार-धन्धे में फँसे हैं, यह व्यवहार राग, यह सब संसार ही है। आहा...हा...! समझ में आया? अपना नाम रखने के लिए नये-नये पुस्तक बनाना... हमने हमारी नयी पुस्तक बनायी है, हमने इतनी पुस्तकें बनायी हैं.... होली एक ही है। बल्लभदासभाई! और फिर कोई सेठ आवे, उससे कहे यह पुस्तक पाँच ले जाओ, पाँच-पाँच ले जाओ, एक रखना और दूसरे प्रभावना करना – यही धन्धा? वे लड़के के राग का धन्धा, तेरे यह धन्धा। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भाई! प्रभु! तू अन्तर्निर्विकल्प-विकल्प के शुभराग से रहित चीज है न! उसका तुझे प्रेम नहीं है, उससे विरुद्ध राग के प्रेम के धन्धे में फँसा है (उसमें) भगवान तू भूल गया है। आहा...हा...! समझ में आया, माँगीरामजी? कितने ही तो धन्धे के लिए पुस्तकें भी रखते हैं, हमारे द्वारा बनायी हुई इतनी पुस्तकें हैं। एक-एक सेट ले जा, एक-एक सेट ले जाओ, तुझे यही धन्धा है? वह लेनेवाला ऐसा कहे, ओ...हो...! महाराज ने बहुत प्रभावना की है। ए... ज्ञानचन्दजी!

भगवान ज्ञानस्वरूप में अन्तर एकाग्र होना, वह ज्ञान की प्रभावना है। यह राग है,

वह तो वास्तव में पुण्य-बन्ध का कारण है। उसके प्रेम में फँसने से अन्दर भगवान आत्मा विस्मृत हो जाता है। यह धन्धा छोड़ – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह व्यवहार है, यह धन्धा खोटा है – ऐसा यहाँ कहते हैं, वह कहते हैं।

यही कारण है जिससे जीव निर्वाण प्राप्त नहीं करते... देखो इस व्यवहार के पुण्य की क्रियाकाण्ड में फंसे... स्वयं करते हैं, दूसरों से कराते हैं, करते हुए को अनुमोदना देते हैं। ओहो...हो...! बहुत अच्छा किया। पाँच लाख-दस लाख खर्च करके एक मन्दिर बनाया हो (तो कहे) तीर्थंकर गोत्र बाँधोगे.... धूल में भी नहीं बाँधेगा, सुन न! पैसा खर्च किया उसमें राग मन्द किया हो तो कदाचित् पुण्य होगा। उस पुण्य में तीर्थंकर गोत्र नहीं बाँधेगा, उस पुण्य से लाभ माने वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। समझ में आया? आहा...हा...! हीरालालजी! क्या है? पुस्तक है या नहीं? यह आया न?

सकल संसार, शरीर में प्राप्त इन्द्रियों के विषयों के तथा भूख-प्यास के रोग.... उसमें पड़े हैं। यह तो स्थूल बात करते हैं। उसे कोई परोपकारी गुरु मिलता है, कहते हैं। **सुनाना चाहता है, तो उसकी तरफ ध्यान नहीं देता....** ध्यान नहीं देता, यह तो सब निश्चय की बातें करते हैं, निश्चय की बातें करते हैं (ऐसा करके) निकाल देता है। निश्चय अर्थात् सच्ची, व्यवहार अर्थात् आरोपित – खोटी... सुन न! यह तो निश्चय की बात करते हैं, लो! आत्मा ऐसा और आत्मा ऐसा, आत्मा ऐसा... कुछ करना नहीं? परन्तु क्या करना? अन्दर पहचान करके स्थिर होना, यह करना है। आत्मा में ज्ञान और श्रद्धा करके अन्दर स्थिर होना, यह करना है। दूसरा करना क्या है? आहा...हा...!

कहते हैं कि **मनरहित पंचेन्द्रिय को हित-अहित का विचार करने की शक्ति नहीं है।** तुझे कुछ शक्ति मिली तो तू पर में घुस गया। समझ में आया? नारकी जीवों का धन्धा मार खाना और दूसरों को मारना है। यह धन्धे की व्याख्या की। **मान कषाय की तीव्रता से मनुष्यों को अपनी प्रसिद्धि करने की तीव्र इच्छा (रहती है)।** मान-कषाय के लिए तीव्र इच्छा-मान दो, अभिनन्दन दो, हमारा नाम रखो, पाँच लाख का मकान, बनाकर हमारा नाम रखो.... नाम रखना है न? भटकने का... नाम खोना नहीं है न?

मुमुक्षु – दूसरों को दान करने की प्रेरणा मिलती है।

उत्तर – किसकी प्रेम मिलता होगा, तुझे मान चाहिए, उसमें प्रेरणा कहाँ रही? समझ में आया? कोई धनादिक का संग्रह करता है – ऐसी बात है।

फिर आत्मानुशासन की थोड़ी बात करते हैं। **बालवय में अंग ही पूरे नहीं बनते तब अज्ञानी होकर अपने हित-अहित का विचार नहीं कर सकता है।** है न? **जवानी में काम से अन्धा होकर स्त्रीरूपी वृक्ष से भरे वन में भटकता रहता है। प्रौढ़ावस्था में तृष्णा की वृद्धि करके अज्ञानी प्राणी खेती आदि कार्यों द्वारा धन कमाने में कष्ट पाया करता है।** और बाहर त्यागी होवे तो रागादि की क्रिया में पड़ता है। सब एक ही प्रकार का धन्धा है। **इतने में बुढ़ापा आ जाता है, तब अधमरा हो जाता है। भला भाई! हम मनुष्य जन्म को सफल करने के लिए निर्मल धर्म कहाँ करते हैं?** अब इसे धर्म करने का अवसर कहाँ? वह समय तो गँवा दिया। टोडरमलजी कहते हैं न! एक तो वास्तव में समय आया, तब व्यवहारधर्म में इसमें समय गँवाया। व्यवहारधर्म अर्थात् राग और पुण्य, दया और दान, इसमें गँवाया; (आत्मा का) निश्चय करने का, अनुभव का समय तो चला गया। समझ में आया? ए... रतिभाई! अद्भुत यह।

☆ ★ ☆

आत्मज्ञान बिना शास्त्रपठन निष्फल है

सत्थ पढंतहँ ते वि जड, अप्पा जे ण मुणंति।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति॥५३॥

शास्त्र पाठि भी मूढ़सम, जो निज तत्त्व अजान।
इस कारण इस जीव को, मिले नहीं निर्वाण॥

अन्वयार्थ – (सत्थ पढंतह जे अप्पा ण मुणंति ते वि जड) शास्त्रों को पढ़ते हुए जो आत्म को नहीं पहचानते हैं, वे भी अज्ञानी हैं **(तहिं कारणि ए जीव फुडु लहंति)** यही कारण है कि ऐसे शास्त्र पाठी जीव भी निर्वाण को नहीं जाते हैं, यह बात स्पष्ट है।

☆ ★ ☆

अब, ५३ – शास्त्र पाठी... देखो! इसमें लिखा है, हाँ! गुरु से सुनता है परन्तु समझे नहीं तो शून्य है, कहते हैं। **आत्मज्ञान बिना शास्त्रपाठ निष्फल है।** लो! आया अब। यह तेरा शास्त्र पढ़ परन्तु यह आत्मा शास्त्र के पठन के विकल्प से भिन्न है, ऐसे सम्यक् के अनुभव बिना तेरे शास्त्र का पठन भी रण में चिल्लाने जैसा है। आहा...हा...! बहुत परन्तु यह तो किसी का सब निकाल देते हैं। छिलके तो निकाल ही डाले न!

सत्थ पढंतहँ ते वि जड, अप्पा जे ण मुणंति।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति॥५३॥

देखा! जड़ कहा, जड़। **शास्त्रों को पढ़ते हुए भी जो आत्मा को नहीं पहचानते....** शास्त्र-पठन, यह किया और यह किया और यह किया... यह तो सब विकल्प हैं, यह तो राग है। शास्त्र का पठन तो परलक्ष्यी ज्ञान है।

मुमुक्षु – परन्तु शास्त्र में सातवें गुणस्थान में अनुभव लिखा है।

उत्तर – धूल में भी नहीं लिखा उसमें। शास्त्र में लिखा है कि चौथे गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभव होता है। समझ में आया? आत्मा में चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण दशा प्रगट होती है। आत्मा में चौथे गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है – ऐसा भगवान ने कहा है। आठवें में कहीं नहीं लिखा है। उलटे (अर्थ) निकालते हैं।

'**सत्थ पढंतह**' कहा न? देखो न! **कितने ही विद्वान् अथवा स्वाध्याय करनेवाले व्याकरण, न्याय, काव्य, वैद्यत्व, ज्योतिष, धर्मशास्त्र आदि अनेक विषय के शास्त्र जानते हैं परन्तु शुद्धनिश्चयनय के विषय ऊपर लक्ष्य नहीं देते हैं।** लो, भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति परमानन्द, विकल्प और राग से रहित है; उस पर वे दृष्टि नहीं देते हैं, पुरुषार्थ नहीं करते। आहा...हा...! देखो! अन्दर धर्म शास्त्र लिखा है, हाँ! आत्मज्ञान से बाहर रहते हैं, देखा! अध्यात्मज्ञान से बाहर रहते हैं। अध्यात्मज्ञान का पता नहीं पड़ता। उसका यह है और व्याकरण ऐसा होता है, इसका शब्दकोश ऐसा होता है, इसकी यह धातु होती है और यह धातु होती है.... तेरी चैतन्य धातु कैसी है? यह तो निर्णय कर। बल्लभदासभाई! अरे...अरे...! भारी झटके हैं हाँ! यह बहिनें, नहीं? दाने, फटकती है दाने? सूपड़ में फटकती हैं। फिर नीचे मारती हैं गब्बोई, वे जरा छिलके (होते

हैं वे एकदम निकाल डालें)। ऐसा यहाँ कहते हैं। आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु के भान बिना तेरा यह पठन किस काम का? और दूसरे को पढ़ाये दूसरे के निकाल छिलके, निकल जाएँगे। समझ में आया?

आत्मा ही निश्चय से परमात्मदेव है, उसका अनुभव उन्हें नहीं होता, इसलिए वह भी जड़.... है। आहा...हा...! भाषा देखो न? ये शास्त्र के पढ़नेवाले भी जड़... क्यों? कि राग और पर का ज्ञान, वह चैतन्य नहीं है। भगवान आत्मा अपने अन्तर्मुख में जाकर चैतन्य का अन्तरज्ञान करे, उसे चैतन्य कहते हैं। आहा...हा...! इतनी पुस्तकें इसने बनायीं, अमुक साधु ने इतनी बनायी, दो लाख (पुस्तकें बनायी) परन्तु धूल... दस लाख बनावे तो वह तो उसने राग किया और जड़ की क्रिया मैंने बनायी – यह तो मिथ्यात्व किया। मैंने पुस्तकें बनायी – यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है। हरिप्रसादजी! पुस्तक बनाना यह...? समझ में आया?

जिनवाणी पढ़ने का फल निश्चय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने का प्रयास है। देखो! **जिनवाणी पढ़ने का फल निश्चय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने का प्रयास है। इसके लिए ही चारों अनुयोगों के ग्रन्थ पढ़कर शास्त्री विषय जानकर, मुख्यरूप से यह जानना चाहिए कि यह जगत जीवादि छह द्रव्यों का समुदाय है,** इससे मेरा तत्त्व पृथक् है। आत्मा और ज्ञान को इसमें से निकाले तो उसने शास्त्र में कहे हुए फल को जाना कहलाये। आत्मा को निश्चय से न जाने तो कुछ इसने जाना नहीं है। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)